IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 07, 2022

भारतीय भाषा दर्शन की भूमिका

डॉ कृष्ण चंद पांडेय

सहायक आचार्य

भदंत आनंद कौसल्यायन बौद्ध अध्ययन केंद्र

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय।

वेदांगभूत निरुक्त का कथन है - वचे: उच्यते अनया इति वाक् अर्थात् जिससे बोला जाय, वह वाक् है। यहाँ यह स्पष्ट है कि निरुक्तकार ने वाक् के रूप में वाणी अथवा भाषा के भौतिक अथवा व्यावहारिक पक्ष को ही लिया है। किंतु भारतीय भाषा चिंतन के मूल उत्स वेदों में वाक् के भौतिक पक्ष के साथ-साथ उसके आध्यात्मिक पक्ष का, उसके सांव्यावहारिक पक्ष के साथ-साथ पारमार्थिक पक्ष का तथा उसके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक सभी पक्षों, रूपों और स्तर भेदों का स्पष्टता, सूक्ष्मता और विशदता के साथ काव्यात्मक भाषा में व्यापक निरूपण मिलता है।

वैदिक साहित्य विशेषत: ऋग्वेद में वाक् विषयक अत्यंत महत्वपूर्ण दार्शनिक उद्भावनाएँ मिलती हैं। ऋग्वेद के दसवें मंडल के वृहस्पति द्वारा दृष्ट सूक्त में वाक् ऋषियों के चैतन्य एवं साधना से उपपन्न निरूपित है। वहाँ इसके अंतर और बाह्य अथवा सामाजिक और वैयक्तिक पक्ष सूक्ष्मता के साथ प्रतिपादित हैं। यहाँ वाक् के व्यक्त-अव्यक्त, स्थिति-स्वरूप और प्राकट्य आदि का बड़ा गहन निरूपण है, यथा -

बृहस्पते प्रथमं वाचो अयं यत्प्रैरत नामधेयं दधाना:।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि: ।।1।।
सक्तुमिव तितउना पुनंतो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अचा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।।2।।
यज्ञेन वाच: पदवीयमायन्तामन्वविंदन्नृषिषु प्रविष्टां ।
तामाभृत्या व्यदधु: पुरुचा तां सप्त रेभा अभि सं नवंते ।।3।।
उत त्वं पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व: शृण्वन्न शृणोत्येनां ।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा: ।।4।।

इस सूक्त के उद्धृत उपर्युक्त मंत्रों में से पहले मंत्र के प्रथमार्द्ध में व्यंजनार्थ 'वाक् का पहले पहल नाम के रूप में परिणति को वृहस्पति द्वारा दृष्ट' दिखाया गया। 'नाम' वेद में, उपनिषद् में, षड़ दर्शन में और यहाँ तक कि अवैदिक एवं नास्तिक दर्शन में भी चेतन रूप में ख्यात है। मंत्र के द्वितीयार्द्ध में वाक् के प्रकट होने के रहस्य को प्रतीकात्मक और काव्यात्मक रूप में यह कहते हुए कि 'ऋषि के हृदय (गुहा) में जो श्रेष्ठ और अक्षत था, वह प्रेम से आविर्भूत हुआ', अर्थात् ऋषि चैतन्य से साक्षात्कृत सत्य और तत्त्व एवं ऋषि-हृदयस्थ भावों ने (प्रेम के कारण - प्रेम आह्लाद का प्रतीक है, वह आप्तकामता का प्रतीक है, वह व्यक्तिनिष्ठ आत्म के साथ साथ सर्वात्म, वैयक्तिकता के साथ साथ सामाजिकता के बोध एवं उसका नियामक सूत्र है) अपनी अभिव्यक्ति और विस्तार की इच्छा द्वारा स्वयं को आविष्कृत और प्रकाशित किया। इस मंत्र का यह भी आशय है कि वाक् का अव्यक्त (सूक्ष्म) रूप जो चेतन पुरुष आत्म से अभिन्न है, गुह्य है, वह जब इच्छा, संवेग, भावना और कर्म से संपृक्त होना चाहा, तब उसका व्यक्त (स्थूल) रूप आविर्भूत हुआ। इस सूक्त के दूसरे मंत्र

का आशय यह है कि 'जैसे किसी द्रव्य को या पदार्थ को किसी उपकरण/माध्यम से छानकर शुद्ध किया जाता है वैसे ही वाक् के प्रथम द्रष्टा/उपलब्धकर्ता ने उसे चेतना (मनायतन) द्वारा शुद्ध करके (प्रक्षालित कर) उपलब्ध किया।' इसका यह भी आशय है कि जो अव्यक्त चेतन पुरुष आत्म प्राण अथवा ऊर्जा के रूप में अमूर्त था, वह मानव मन अर्थात् चित्त अथवा चेतना से गुज़रकर अपने परिशुद्ध रूप में व्यक्त हुआ। इस व्यक्तावस्था में परिणति के पश्चात् 'विभिन्न मनुष्यों ने उसे आपने अनुकूल पाया' अर्थात् वह उनको प्रिय और आत्मीय रूप में उपलब्ध हुआ तथा वह (व्यक्त वाक्) उनकी भावनाओं, संवेगों और संप्रेषण का मुख्य आधार बना। यहाँ पुनः वाक् (वाणी) के वैयक्तिक और सामाजिक पक्ष का निरूपण है। वैदिक साहित्य में यज्ञ पद अत्यंत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है। इस मंत्र में इसका अर्थ साधना से है। इस प्रकार इस सूक्त के तीसरे मंत्र का आशय है कि 'वाक् तत्त्व का, जिन्होंने उसे उपलब्ध किया था, उन्होंने साधना के द्वारा उसका पता लगाया था और जब उन्होंने उसका ज्ञान किया तो उन्होंने पाया कि यह वाक् तत्त्व पहले से ही चेतना को प्रक्षालित किए हुए मंत्र द्रष्टा ऋषियों में निहित था। ऐसा जानकर उन जानने वाले लोगों ने वाक् तत्त्व का बहुतों में प्रचार किया। वही वाक् सात स्वरों जो संगीत अथवा मूर्त अमूर्त स्वरों का आधार बना।' चौथे मंत्र का आशय है कि 'वाक् का द्विविध स्तर है, एक उसका संवृति रूप है दूसरा गुह्य गोपन पारमार्थिक रूप।' अथवा यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य की पात्रता के अनुसार वाक् अपने को अपने स्वरूप को व्यक्त अथवा अव्यक्त रखती है। साधारण मनुष्यों के लिए उसका सामान्य व्यावहारिक रूप प्रकट होता है, परंतु उसका मूल पारमार्थिक स्वरूप उन्हीं के सामने प्रकट होता है जो उसके समक्ष साधना के द्वारा एवं अपनी चेतना के प्रक्षालन द्वारा अपनी पात्रता सुनिश्चित करते हैं। इसीलिए यह सूक्त अपनी सांकेतिक दार्शनिक उद्भावना ओं के कारण भाषा के एवं तत्सम्बंधि परवर्ती समस्त भारतीय चिंतन के लिए आदि स्रोत, आधार और प्रमाण की तरह उपलब्ध होता है।

इस सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद में ही निबद्ध अस्यवामीय सूक्त वाक् के बड़े गहरे स्तरों को खोलती है। इस सूक्त के प्रत्येक मंत्र अत्यंत सूक्ष्म तथा गहन हैं। यदि उन मंत्रों पर सम्यक् रूप से विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि ये मंत्र आर्ष साहित्य और उस साहित्य में प्रतिपादित धर्म और दर्शन तथा उस धर्म और दर्शन के आधार पर कालांतर में विकसित समस्त आस्तिक दर्शन सम्प्रदायों एवं उनमें अंतरभुक्त भाषा चिंतन के मूल हैं। इस सूक्त के तीसरे मंत्र का आशय है - 'जो सात इस रथ पर अधिष्ठित हैं, इन्हें इनके सात पहिये वाले रथ को सात घोड़े खींचते हैं, सात बहिने प्रशस्ति करती हैं, जिसमें गायों के सात नाम निहित हैं।' यह स्पष्ट है कि इस मंत्र में वाक् के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीन पक्ष सन्निहित हैं। वाक् के रूप में व्यक्त भाषा का यहाँ आधिभौतिक संदर्भ यह है कि वाक् अपने को सप्तधा अर्थात् सात मूल स्वरों में प्रकाशित करती है। जो सात इस रथ पर अधिष्ठित प्रतिपादित हैं, वे आध्यात्मिक रूप में पिंड अथवा ब्रह्मांड के सात चक्र, लोक अथवा स्तर हैं। सात पहिये वाले सात रथ इसको खींचते हैं, इसका आधिदैविक अर्थ देह में स्थित विभिन्न अधिष्ठान हैं जिसके द्वारा इन्द्रिय, मन, प्राण, अंत:कारण इत्यादि प्रवर्तित होते हैं। इस समूचे क्रिया व्यापार का अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण की गति को तथा पिंड और ब्रह्मांड के स्वरूप और स्तर-भेदों को वाक् ही व्यक्त करती है। इस मंत्र का यह भी आशय है कि व्यक्ति-पिंड और ब्रह्मांड में घटित घटनाओं को नाम अथवा चेतना के द्वारा प्रच्छादित कर वाक् अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इसे ही इस यहाँ 'सात बहिने प्रशस्ति करती हैं' कहा गया है।

वैदिक साहित्य में वाक् के उद्भव, उसकी अवस्थिति और उसके क्रिया व्यापार के विषय में गहरा उहापोह मिलता है। ये जिज्ञासाएँ समाधानात्मक रूप में उत्तर के लिए अथवा किसी गूढ़ आध्यात्मिक विषय के प्रदर्शन रूप में ही प्रायः मिलती हैं। पहले रोचक शैली में प्रश्न, फिर उसका वैसा ही प्रसन्न उत्तर, यथा—

पाक: पृच्छामि मनसाविजानन्दे वानमेना निहिता पदानि ।
वत्से वष्कयेअधि सप्त तंतन्वि तत्रिरे कवय ओतुवा उं ।।1.164.5।।
पृच्छामि त्वा परमंत पृथिव्या: पृच्छामि यच भुवनस्य नाभि: ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेत: पृच्छामि वाच: परमं व्योम।।1.164.34।।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में बार-बार यह प्रश्न उठाकर कि वाक् क्या है, उसका स्वरूप क्या है, उसका अधिष्ठान क्या है? उसकी अवस्थिति कहाँ है? उसके स्वरूप, अधिष्ठान और अवस्थिति के बारे में संकेत किया गया है। ये संकेत प्रतीकात्मक हैं, जैसा कि इन्हें होना था क्योंकि वाक् जिसका तुरिय मनुष्य बोलते हैं वह उससे, उस प्रकट वाणी से भी सूक्ष्म अति सूक्ष्म है, वह भाषा का, विचार का और जगत् की समृद्धि का आधार है, वह इच्छा, संकल्प और क्रिया का भी आधार है, वह संघर्ष, स्पर्धा और शासन का भी आधार है, यथा —

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकीतुषी प्रथमा यज्ञीयानां ।
तां मा देवा व्यदधु: पुरुचा भूरिस्थाचा भूर्यवेशयंतीं ।। 1।125।3।।
मया सो अन्न मत्ति यो विपश्यति य: प्राणिति य र्द शृणोत्युक्तं ।
अमंतवो मां त उप क्षियंती श्रुधि श्रुत श्रुडिवं ते वदामि।।
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभि: ।
यं कामये तंतमुअं कृणोमि तं ब्रह्मानं तमृषि तं सुमेधा।।
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मविश्वे शरवे हंतवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनि रप्स्वंत: समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ।
अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।।

वेदों में विवक्षित वाक् सम्बंधी उपर्युक्त उद्भावनाओं का उपनिषदों में विस्तार होता है। वेदों में उपलब्ध वाक् सम्बंधी समस्त दार्शनिक उद्भावनाएँ समवेत रूप से यह संकेत करती हैं कि वाक् कोई दृष्ट, भौतिक और कायिक उपकरण अथवा संस्थान नहीं है, अपितु वह चैतन्य के रूप में अक्षत ऊर्जा से अभिन्न है। इसी चैतन्य का नाम अथवा इस अक्षत ऊर्जा का चिति के रूप में उपनिषद में विस्तरश: प्रतिपादन है। इसके साथ ही वेदांगों में तथा षड़ दर्शनों में भी वेदों में उद्भावित भाषा चिंतन के ही सूत्र कालक्रम से एवं व्याख्या और दृष्टि भेद के साथ नाना रूपों में विवेचित, व्याख्यायित और विश्लेषित हैं।

वेद शब्दात्मक हैं और शब्द साक्षात्कारात्मक ज्ञान में दृश्य हैं अतः शब्द ज्ञानरूप अथवा प्रमाणभूत हैं, यही मूल वैदिक दृष्टि परम्परा में शब्द प्रमाण, आगमिक प्रमाण, वेद प्रमाण अथवा शब्द के अपौरुषेयत्व के रूप में स्वीकृत होकर भारतीय भाषा चिंतन के ज्ञानमीमांसीय और

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 07, 2022

न्यायशास्त्रीय आधार का निर्माण करती है। दूसरी ओर "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" अथवा "वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण सिमटे सप्त वाणी" का मूल दर्शन परवर्ती व्याकरण दर्शन और संगीतशास्त्र में विस्तारित हो अपना व्याख्या लाभ तथा रूप पाता है। इसके साथ ही 'यत्प्रैरत नामधेयं दधाना:, अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां, तत: क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति अर्थात् वाक् उच्चरित ध्वनि है, शक्ति है और रस है' यह संकल्पना अपने काव्यात्मकता, रसात्मकता , ध्वन्यात्मकता के कारण तथा अपने स्तर-भेद के साथ काव्यशास्त्र में शक्ति, रस और ध्वनि के रूप में संक्रांत, गृहीत और स्वीकृत होकर कालांतर में भाषा चिंतन का मार्ग प्रशस्त करती है। उदाहरण के लिए यदि वेदांगभूत व्याकरण और तत्संबंधि समग्र शास्त्र शब्द की शुद्धता अशुद्धता पर विचार करते हैं, तो काव्यशास्त्र शब्द की योग्यता-अयोग्यता अथवा उसके औचित्य पर विचार करता है।

वेदों में उपलब्ध भाषा चिंतन के इन समस्त सूत्रों को कालांतर में व्याख्यायित उनके नाना रूपों और प्रभेदों के साथ समग्रता में पकड़ना, उन्हें आर्ष चिंतन और परम्परा में रखकर भारतीय चिंतन को वाक् केंद्रित चिंतन के रूप में देख सकने की दृष्टि को पुनर्स्थापित करना ही इस पुस्तक का प्रमुख उद्देश्य होगा।